

इस प्रकार हिंदी यात्रा-साहित्य में पर्यावरण विमर्श के कई पहलू मिलते हैं। जहाँ यात्रा-साहित्यकार ने अपने देखे समझे हुए को अपने वृत्तांत में व्यक्त किया है। आधुनिक दौर में विकास के नाम जिस प्रकार प्रकृति का अंधाधुंध दोहन हो रहा है, आवश्यकता के स्थान पर लालच की दृष्टि से प्रकृति का उपभोग किया जा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि पर्यावरण के महत्त्व को जनसामान्य तक पहुँचाया जाए। प्रकृति के साथ मानव का सामंजस्य बैठाना एक आवश्यक कार्य है। सम्पूर्ण धरती पर पर्यावरण को किसी से हानि है तो वह निश्चित रूप से मनुष्य ही है, इसके अतिरिक्त सभी जीव-जंतु प्रकृति के साथ ताल-मेल बिठा कर चलते हैं। मनुष्य की इस प्रवृत्ति के कारण ही आज धरती से कई जीव सदैव के लिए लुप्त हो गये हैं तो कुछ संकटग्रस्त श्रेणी में हैं। सभी जीव-जंतुओं और प्रकृति से समन्वय स्थापित करके ही मनुष्य अपना विकास करे यह सम्पूर्ण मानव जाति के लिए आवश्यक है। भौतिकवाद को कम करते हुए मानव को सतत विकास को अपनाना चाहिए। “अद्भुत! जो प्रकृति से प्रेम करेगा उसका खुश रहना तो स्वाभाविक है। और यही इनकी संतुष्टि की निर्भरता पैसे और भौतिक संसाधनों पर कम कर देता है।”⁸ इसके साथ ही पर्यावरण संरक्षण के लिए किए गये अभियानों एवं प्रयासों को धरातल पर उतारने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ-ग्रंथ:-

1. मुसाफिर, नीरज. सुनो लदाख: रेड्ग्रेब बुक्स, प्रथम संस्करण, 2017, पृष्ठ-143
2. अज्ञेय, अरे यायावर रहेगा याद : राजकमल प्रकाशन, चौथा संस्करण, 2021, पृष्ठ-123
3. मुसाफिर, नीरज, अनदेखे पहाड़ : संभावना प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2019, पृष्ठ-176
4. सोडानी, अजय, दर्रा-दर्रा हिमालय : सार्थक प्रकाशन, तीसरा संस्करण, 2019, पृष्ठ-112-113
5. वही, पृष्ठ-105
6. वही, पृष्ठ-104-105
7. मुसाफिर, नीरज, अनदेखे पहाड़ : संभावना प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2019, पृष्ठ-176
8. त्रिवेदी, पल्लवी, खुशदेश का सफर : सार्थक प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2022, पृष्ठ-165

वैश्वीकरण के दौर में हिंदी

डॉ. मकसूद खान

पल्लू, हनुमानगढ़ (राज.)

वैश्वीकरण एक अर्थ में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण है। वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के मध्य आया खुलापन, जुड़ाव तथा परस्पर निर्भरता को वैश्वीकरण की संज्ञा दी जाती है। इसके अंतर्गत विभिन्न देशों के मध्य पूंजी श्रम तकनीकी तथा सेवा का आदान प्रदान किया जाता है एवं व्यापार पर प्रतिबंधों को कम करने का प्रयास किया जाता है। वैश्वीकरण का उदय शीत युद्ध के अंत के पश्चात संचार क्रांति के परिणाम स्वरूप हुआ तथा इससे विश्व के विभिन्न देशों के मध्य सामाजिक तथा आर्थिक संबंधों का विस्तार हुआ। समाजशास्त्री रोबर्टसन को ‘वैश्वीकरण का जनक’ माना जाता है। मैक्लुहान के अनुसार वैश्वीकरण के कारण पूरी दुनिया बेसिक गांव के रूप में परिवर्तित हो गई है, जबकि एंथोनी गिडेंस के अनुसार विभिन्न लोगों और दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों के बीच में बढ़ती हुई पारस्परिकता ही वैश्वीकरण है। यह पारस्परिकता सामाजिक और आर्थिक संबंधों में होती है इसमें समय और स्थान सिमट जाते हैं। वैश्वीकरण इसलिए समय और स्थान की गति और गहनता से जुड़ा हुआ है। कुछ विचार एक ओर वैश्वीकरण को आर्थिक अवधारणा मात्र समझते हैं। उनके लिए यह उदारीकरण निजीकरण और निवेश हैं कुछ विचारक। इसे सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अर्थ में लेते हैं।

गिल्थिंग के शब्दों में वैश्वीकरण राजनीतिक कारणों की उपज है। बाजार ब्याज दर भौगोलिक गतिशीलता आदि समय और स्थान उतार-चढ़ाव के साथ जुड़े हुए हैं। यह जुड़ाव सहज नहीं है। आज का अंतरराष्ट्रीय माहौल कुछ ऐसा है जिसने राष्ट्र-राज्य अपने स्थायित्व और सुरक्षा के लिए किसी अंतरराष्ट्रीय मंच पर आने के लिए तैयार हैं। आज विश्व स्तर पर धारणा बनी है कि कुछ राष्ट्र-राज्य प्रभुत्वशाली कुछ सर्वोत्तम प्रभुत्वशाली यह राष्ट्र राज्य वैश्वीकरण के माध्यम से अपनी अर्थव्यवस्था और संस्कृति विकासशील राष्ट्र राज्यों पर थोपना चाहते हैं। आज वैश्वीकरण के दौर में देश के बीच की सीमा गायब हो रही है। आज समाज में होने वाली सारी गतिविधियों को वैश्वीकरण के संदर्भ में देखा जाता है तथा सतह रूप से तो वैश्वीकरण एक समान दिखता है जैसे शहरों की चमकीली सड़कें पांच सितारा होटल लेकिन उस क्षेत्र से जैसे ही दूसरे क्षेत्र में जाते हैं तो भयंकर अंतर दिखाई देता है अर्थात् छोटे क्षेत्र वैश्वीकरण की दौड़ से बाहर रहते हैं।

भारत ने 1991 से वैश्वीकरण की नीति को अपनाया प्रारंभ किया। वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण ने स्थानीय धंधों को व स्वदेशी उत्पादन का बड़ा नुकसान किया क्योंकि हमारे यहां सूचना समाज अभी ठीक ढंग से विकसित नहीं हुआ। हम तकनीकी क्षेत्र में भी पिछड़े हुए हैं जिससे दुनिया के विकसित देशों के बाजार में हमारा उत्पादन इस बाजार में टक्कर नहीं ले सकता है। परिणामस्वरूप हमारे ही स्थानीय बाजार में हम अपना उत्पादन नहीं बेच पाते हैं। स्थानीय कारखाने एक-एक करके बंद होने लगे तथा बेरोजगारी आसमान को छूने लगी भारत के संदर्भ में आर्थिक वैश्वीकरण का अर्थ उदारीकरण निजीकरण व्यापार आयात निर्यात से लिया जाता है। यह निश्चित है कि भारत में आर्थिक उदारीकरण में नर्क के दरवाजे खोले हैं। वैश्वीकरण का सीधा संबंध बाजार से जुड़ता है और बाजार का संबंध भाषा से जुड़ता है। इस प्रकार वैश्वीकरण के दौर में भाषा की स्थिति को समझने की जरूरत है। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी सहित सभी भारतीय

भाषाओं ने आंदोलन एक मजबूत व धारदार हथियार की तरह काम किया। स्वतंत्रता से पहले हिंदी भारत की सामान्य संपर्क भाषा थी। देश के आजाद होने के बाद राजभाषा की आवश्यकता पड़ने पर हिंदी को 14 सितंबर 1949 को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई। 1955 में राष्ट्रपति द्वारा कहा गया कि जनता के साथ पत्र व्यवहार व अंतरराष्ट्रीय व्यवहारों में अंग्रेजी के साथ हिंदी को बढ़ाया जाए। 1955 में ही राष्ट्रपति ने राजभाषा आयोग बनाया जिसने सुझाव दिए गए कि अंग्रेजी का ज्ञान होते हुए भी सार्वजनिक क्षेत्र में विदेशी भाषा का व्यवहार उचित नहीं है। 14 वर्ष की उम्र तक भारत के प्रत्येक विद्यार्थी को हिंदी का ज्ञान करा देना चाहिए। भारत सरकार के प्रकाशन हिंदी में हो व प्रतियोगिता परीक्षा में हिंदी का अनिवार्य प्रश्न पत्र लिखा जाए। यह सभी आयोग के सुझाव थे लेकिन सरकार ने स्पष्ट व ठोस इच्छाशक्ति के अभाव में कोई प्रभावी कदम नहीं उठाया। राजभाषा 1963 के अधिनियम में संविधान में आश्वासन दिया कि 1965 से सारा कामकाज हिंदी में होगा राजनीतिक कारणों से ऐसा नहीं हुआ और तमिलनाडु व बंगाल ने हिंदी का घोर विरोध किया इसके बावजूद भी बहुत सारे अधिनियम बनते रहे और हिंदी के विकास की बातें दोहराई गईं। आगे चल कर हिंदी उस रूप में सम्मानित नहीं हो पाई जितनी अपेक्षा थी जिसके पीछे एक कारण अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के विकास के पक्षकारों का दबाव था।

आज वैश्वीकरण के दौर में हिंदी की चुनौतियां विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ रही हैं। जिसमें बाजार शिक्षा पत्रकारिता सोशल मीडिया इत्यादि है जिसमें हर क्षेत्र में हिंदी भाषा के स्वरूप को बिगाड़ा है। वैश्वीकरण के दौर में शिक्षा व शिक्षण संस्थान हमारे देश में आज हिंदी पढ़ने वालों की संख्या अंग्रेजी पढ़ने वालों से ज्यादा है लेकिन व्यावहारिक स्तर पर हम जानते हैं कि किस प्रकार आज भारत के लोग कर्ज लेकर भी अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम में पढ़ा रहे हैं जिससे अंग्रेजी माध्यम की स्कूलों में हर गली चौराहे पर हो रही है। वह इन स्कूलों का व्यावसायीकरण करके मोटी रकम कमा रहे हैं। बड़े बड़े पूंजीपति इस धंधे में उतर रहे हैं वही हिंदी माध्यम के विद्यार्थी कम होते जा रहे हैं। जहां विश्वविद्यालयों में अनिवार्य हिंदी का पूरा प्रश्न पत्र होता था उसमें आधा भाग अंग्रेजी का कर दिया गया जाता है। आर्थिक उदारवाद में जहां शिक्षा की जगह जगह दुकानें खुल गई हैं वही सरकार भी निजी स्कूलों को बढ़ावा दे रही है जो सरकारी संस्थान हैं। उन्हें भी निजी करण करने की कोशिशें से चल रही हैं साथ ही शिक्षा का स्वरूप कैसा हो, बच्चों को क्या पढ़ाना चाहिए - यह सब शिक्षक की जगह पूंजीपति वर्ग पर करते हैं। सरकार इन्हीं के इशारे पर शिक्षा में बाजारीकरण को बढ़ावा दे रही है। यह व्यावसायिकता शिक्षण संस्थानों पर इस कदर हावी है कि उन्हें बच्चों की शिक्षा से ज्यादा अपने व्यवसाय की चिंता है जिससे बच्चे शिक्षा में पिछड़ती जा रहे हैं और आए दिन आत्महत्या कर रहे हैं। एक स्थिति यह भी है कि हिंदी के शोधार्थियों को हिंदी पुस्तकालय में हिंदी पत्रिकाएं नहीं मिल रही हैं। आज हिंदी में शोध पत्रिकाएं न के बराबर और गंभीर लेखों के प्रकाशन का ना होना व्यावसायिकता की देन है। बहुत सारे अंग्रेजी माध्यम के ऐसे स्कूल होते हैं जहां हिंदी बोलने पर दंड दिया जाता है। ऐसी स्थिति में लोग मजबूरन हिंदी और उसके प्रयोग से कटते जा रहे हैं। वैश्वीकरण का मीडिया हिंदी में भाषाई प्रामाणिकता को लेकर कुछ ऐसा नहीं कर रही जैसी प्रतिष्ठा सरस्वती से लेकर आगे के संपादन में दिनमान साप्ताहिक ने की थी। वैश्वीकरण के दौर में ऐसी प्रतिष्ठा बनती किसी की नहीं दिखाई दे रही। यह एक दुःखद सच्चाई है। साक्षर जगत में हिंदी को फैलाने का श्रेय मीडिया को कुछ दिया जाना चाहिए लेकिन यह बात भी समझनी होगी

कि प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने लगातार बदलाव के नाम पर हिंदी को दूषित किया है। हिंदी दूसरी भाषाओं के प्रति हमेशा उदार रही है। अनेक साहित्यकारों ने विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया लेकिन उससे हमारी हिंदी समृद्ध ही हुई (तुलसीदास ने रामचरितमानस में अरबी व फारसी शब्दों का इस्तमाल किया)। लेकिन इस दौर में जो हो रहा है वह हिंदी को कमतर सिद्ध करने के लिए किया जा रहा है।

घालमेल का पहला पूर्वाग्रह यह है कि अंग्रेजी विश्व भाषा है। इसलिए इनके शब्दों को हिंदी में ठूस कर संप्रेषणीय बनाया जा सकता है। मुख्यमंत्री, गृह मंत्री, उच्चतम न्यायालय हिंदी में काफी समय से आते रहे हैं। लेकिन इन्हें अंग्रेजी में बदलकर हिंदी के शब्दों को हाशिए पर धकेला जा रहा है। दूसरा पूर्वाग्रह हिंदी में भाषा परिवर्तन मीडिया कर रहा है। जबकि सच्चाई यह है कि हिंदी अपनी शर्तों पर बदल रही है। जैसे दलित विमर्श स्त्री विमर्श जो पहले नहीं थे। आज अखबार तेजी से पाठकों के लिए नहीं उपभोक्ताओं के लिए निकाले जा रहे हैं। अधिकतर मालिकों में मीडिया मिशन नहीं व्यापार हो गया है। साहित्य में जहां शब्द संसार बढ़ रहा है, मीडिया में सिकुड़ रहा है। आज मीडिया हिंदी में अपना काम करने को मजबूर है जिसका कारण व्यवसाय है। साहित्य की भाषा में क्या हो रहा है, क्या नहीं उससे कोई लेना देना नहीं है। मीडिया सफल होने के चक्कर में अपनी सार्थकता से हट रहा है। आज पत्रकारिता का एकमात्र लक्ष्य विज्ञापन के द्वारा मोटी रकम कमाना है। विज्ञापन पूंजीवाद का सबसे बड़ा साधन हो गया है। विज्ञापन के द्वारा हमारी संस्कृति विलुप्त हो रही है। विज्ञापन का मूलमंत्र यह है कि किसी भी वस्तु की मांग तभी बढ़ती है जब उसे बार-बार नजर के सामने लाया जाए।

विज्ञापन द्वारा नारी की स्वतंत्रता की बात जोड़ कर उन्हें विज्ञापन में उत्तेजक मुद्राओं में दिखाया जाता है। हरिशंकर परसाई ने 'विज्ञापन में नारी रचना' में व्यंग्य किया है। इस देश की सारी सुंदर स्त्रियां कंपनी की नौकरानियां हैं जिनका काम ग्राहकों को आकर्षित करना है। सुंदर स्त्री के जीवन का महान उद्देश्य है किसी कारखाने के माल को दिखाना और सबसे बड़ी बात प्रेम व सौंदर्य का सारा स्टॉक कंपनियों ने खरीद लिया है। नारी को विज्ञापन द्वारा बाजार की वस्तु बनाया जा रहा है। लेकिन नारी चिंतक इस बात का विरोध नहीं कर रहे हैं। परसाई जी अपनी रचना विज्ञापन संस्कृति में प्रतिष्ठित व्यक्तियों के विज्ञापन में उतरने पर सवाल उठाते हैं। आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं - विज्ञापन समझ को ढकना चाहता है। कुछ समय पहले पत्रकार गौरी लंकेश की हत्या कर दी गई लेकिन समाचार पत्रों में यह खबर बहुत छोटी दिखाई गई। 13 वैश्वीकरण व स्थानीय संस्कृति का संपर्क मीडिया व बाजार से होता है। कुछ आलोचकों का कहना है कि विदेशी संस्कृति और बाजार इतने प्रभुत्वशाली होते हैं कि वह स्थानीयता को समाप्त कर देते हैं। धीरे-धीरे शास्त्रीय संगीत व लोक नृत्य की जगह पॉप संगीत व वेस्टर्न डांस ले रहे हैं। इस संस्कृति ने पहनावे पर भी प्रभाव जमाया है। आधुनिक महिला नाइट क्लब, धूम्रपान, मिनी स्कर्ट, जींस को अपनी पहचान मानती है। यह सब ठीक है लेकिन जब हमारी संस्कृति को हम दरकिनार करते रहेंगे तो विश्व समुदाय में अपनी अलग पहचान कैसे बनाएंगे। वैवाहिक जैसे कार्यक्रम का स्थान मैरिज ब्यूरो ने ले लिया है। हमारी स्थानीय संस्कृति पर पश्चिमी संस्कृति हावी होती जा रही है। आज हम पिज्जा बर्गर व कोका कोला के फेर में छाछ व लस्सी को भूल रहे हैं। वैश्वीकरण का प्रभाव घर की भाषा पर भी देखने में आता है। घर में भी हम रिश्ते में पापा-मम्मी बुआ फूफा नाना नानी दादा दादी कहना भूल रहे हैं। हाल यह है कि मंडे को तो जानते हैं पर सोमवार नहीं जानते। विंटर का पता है लेकिन बसंत व हेमंत का नहीं पता। किचन समझते हैं रसोईघर नहीं। यह सब न जानकर इस शिक्षा व्यवस्था में अपनी मातृभाषा से कट रहे हैं।

साथ ही फादर्स डे मदर्स डे वेलेंटाइन डे आदि को मनाते हैं पर नाग पंचमी वसंत पंचमी मकर सक्रांति क्या होते हैं नहीं जानते हम अमलतास व कचनार के फूल का रंग नहीं जानते। आज हमें पिज्जा बर्गर का स्वाद खूब पता है परदेसी पकवानों को देखकर उनकी पहचान पहचानते हैं। आज किसी भी अवसर पर ग्रीटिंग कार्ड के कागज दिए जाते हैं लेकिन तीज त्यौहार पर क्या पकवान बनते हैं – यह धीरे-धीरे भूलते जा रहे हैं। आज हम घर में बाजार द्वारा परोसी गई खिचड़ी भाषा का प्रयोग करके अपनी संस्कृति से कट रहे हैं। वही हालात महानगरों में हिंदी दिवस को हिंदी डे बना देते हैं। हमारे यहां विदेशी संस्कृति फैलाने का कार्य मीडिया ने ही किया है और इसी कारण हमारी संस्कृति हमारे हाथों में साबून की तरह फिसलती जा रही है।¹

वैश्वीकरण व बाजार की भाषा-, वैश्वीकरण का सीधा संबंध बाजार से होता है और बाजार का संबंध भाषा से होता है। आज लेखक से ज्यादा बाजार तय करने लगा है कि आपको यह लिखना है यह लिखोगे तो ज्यादा बिकेगा। बाजार का यह रवैया भाषा के मौलिक स्वरूप को बिगाड़ रहा है। जिन लेखकों के विचारों में गहराई है मौलिकता है उसको बाजार नकार दे रहा है और कुछ लेखक जिनका लेखन प्रभावशाली ना होते हुए भी बाजार के जरिए खूब बिक रहा है तब समझ आता है कि बाजार पाठक व लेखक के बीच कैसी दूरी पैदा करते हैं और मौलिक साहित्य का अभाव होता जा रहा है। जब पाठक किसी साहित्य को नकारता है तो बाजार विज्ञापन के जरिए हिंदी साहित्य जगत पर जनता की पसंद को प्रचारित करता है। ऐसे साहित्य में किसानों की आत्महत्या, बेरोजगारी का दंश झेलते युवा, हाशिए के लोग का सुख-दुख गांव में नगर व जीवन-बोध की चर्चाएं न के बराबर रहती हैं। इसलिए हमें समझना चाहिए कि हिंदी के प्रकाशक शुद्ध व्यवसायी हो गए वह वही किताबें छापते हैं जिनकी बाजार में मांग है।²

सोशल मीडिया व टी.वी की भाषा मीडिया व टीवी चैनलों के माध्यम से जो कुछ दिखाया जा रहा है उससे हमारा समाज दिशाहीन होता जा रहा है तथा संस्कृति को प्रदूषित किया जा रहा है। मास मीडिया ने हिंदी को बाजार भाषा में बदल दिया है। जैसे हिंदी फिल्मकार हिंदी में फिल्म इसलिए बनाते हैं क्योंकि यह ज्यादा लोगों द्वारा बोली व समझी जाती है जिससे वह अपना अच्छा व्यवसाय कर सके लेकिन प्रमोशन के समय अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते हैं। वर्तमान दौर में फिल्मों के नाम व उन में प्रयुक्त गानों में अंग्रेजी का धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा है तथा भाषा का स्वरूप बिगड़ रहा है। इसका कारण महानगरों में आम बोल चाल की भाषा में अंग्रेजी के शब्द आ रहे हैं वही शब्द अब टीवी पर आने लगी आज व्हाटसप व फेसबुक की भाषा में अंग्रेजी का प्रयोग हो रहा है।

इस प्रकार आज के दौर में हिंदी के सामने कई प्रकार की चुनौतियां बड़ी हैं। इन सब के बावजूद हिंदी का वजूद कायम है। आज खतरा इस बात का नहीं है कि दूसरी भाषा के शब्द हिंदी में आ रहे हैं। बल्कि यह देखना है कि इनसे हिंदी का मूल स्वरूप क्षतिग्रस्त न हो जाये। हिंदी की व्यापकता और गहराई समय के साथ बढ़ानी है। सभी को सतर्क रहना होगा कि हम सभी हिंदी के मूल स्वाभाव (स्वतंत्रता, स्वाभिमान, सामाजिकता, सर्वग्राह्यता) को बनाये रखें।

सन्दर्भ –

1. सुशील देसाई : उत्तर आधुनिकता, रावत प्रकाशन, जयपुर, 2015, पृष्ठ -321
2. विश्वनाथ त्रिपाठी : देश के इस दौर में
3. हरिशंकर परसाई : विज्ञापन में नारी
4. जनसत्ता (दिल्ली) 2012
5. दैनिक भास्कर (जयपुर) 2010

संजीव की कहानियों में व्यक्त मानवीय संवेदना का विश्लेषण

डॉ. पी.एम.आर. जयन्ती

प्राध्यापक, हिंदी विभाग

एस.के.आर. एवं एस.के.आर. राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय (स्वायत्त) कडप्पा (आंध्र प्रदेश)

समकालीन कथाकारों में संजीव का नाम उनकी श्रेष्ठ कहानियों के लिए प्रसिद्ध है। वे समकालीन जीवन की विडंबनाओं को एक चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं। इनकी रचनाएँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समाविष्ट संघर्ष स्थितियों को गहराई से चित्रित करती हैं और मानवीय संवेदना को उभारती हैं। वे समाज के विभिन्न पहलुओं, विशेषकर हाशिए पर खड़े लोगों के जीवन, संघर्षों और मानवीय संवेदनाओं को उजागर करती हैं। इस संदर्भ में डॉ. गजानन किशनराव पोलेनवार का कथन समीचीन है "संजीव ने अपनी रचनाओं के माध्यम से हाशिए पर जीवन जीनेवाले उपेक्षित एवं शोषित आदिवासी जनजातियों की संघर्ष गाथा को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत करते हुए आदिवासी जीवन के विविध संदर्भों का अध्ययन-अन्वेषण कर उन्हें रचनात्मक रूप प्रदान किया है। संजीव की दृष्टि व्यापक संदर्भों से जुड़ी हुई है, जिसमें उनकी रचनात्मकता के विविध आयाम दिखाई देते हैं। उन्होंने समाज के शोषित, दलित और उपेक्षित वर्ग को अपने लेखन का विषय बनाया है। उनके उपन्यासों में ग्रामीण, आंचलिक, मेहनतवश तथा शोषित वर्ग का चित्रण है। सामाजिक वर्ग-भेद के परिप्रेक्ष्य में संजीव का कथा साहित्य महत्वपूर्ण है। शोध और श्रम के आधार पर उनका लेखन हिन्दी में अपनी अलग पहचान बनाता है।

संजीव की कहानियों में मानवीय संवेदना का विश्लेषण करते हुए हमें यह अनुभव होता है कि इनकी कहानियाँ व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के विशिष्ट पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करती हैं, जहाँ मानवीय मूल्यों का प्रामाणिक विश्लेषण प्राप्त होता है। इसके अलावा संजीव की कहानियाँ जीवन की उलझनों को गाँव से लेकर नगर, गरीबी से लेकर अमीरी, दलितों से लेकर जमींदारों व सामंतों और आदिवासी जीवन तक व्यापक रूप से चित्रित करती हैं, जैसे राहुल सिंह ने व्यक्त किया है "उनका कथा संसार पात्रों और अनुभवों के धरातल पर इतना वैविध्यमूलक है कि कई बार भ्रम होता है कि क्या यह एक ही व्यक्ति के द्वारा रची गई कहानियाँ हैं।

संजीव की कहानियों में मार्क्सवादी चिंतन का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वे समाज में व्याप्त आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को गहराई से चित्रित करते हैं। उनकी कहानियाँ वर्ग संघर्ष, शोषण और उत्पीड़न के मुद्दों को उभारती हैं, जो समाज के वंचित और शोषित वर्गों के संघर्ष